अध्याय -4

बुनाई व्यवसाय का उद्‌भव एवं विकास

"प्रस्तुत अध्याय में अध्ययनगत कोष्टा समुदाय की उत्पत्ति, इतिहास वृत्त, उनमें प्रचलित संस्कार एवं सामाजिक मान्यताएँ, कोसा एवं बुनकरों का उद्‌भव, बुनाई व्यवसाय-ऐतिहासिक वृत्त, छत्तीसगढ़ में कोसा उत्पादन, बुनाई व्यवसाय - छत्तीसगढ़ में, रायगढ़ क्षेत्र में बुनाई व्यवसाय का उद्‌भव एवं विकास का विस्तृत अध्ययन किया गया।"

कोष्टा समुदाय : उत्पत्ति एवं इतिहास वृत्त

छत्तीसगढ़ में कोष्टा समुदाय के लिए देवागंन एवं मेहर उपजाति प्रचलित है। कोष्टा शब्द की व्युत्पत्ति "कुश" शब्द से हुई है। कुश भगवान रामचन्द्र जी के पुत्र थे, जिन्होंने बाल्मीकी ऋषि के आश्रम में शिक्षा दीक्षा प्राप्त की थी, जिससे इनका एक गोत्र बाल्मीकी कुशवा भी प्रसिद्ध हुआ। इस तरह इससे कुलीन जाति का बोध होता है। |138|

इस शब्द की दूसरी उत्पत्ति कोसे से मानी जाती है। जन श्रुति के अनुसार इनके पैत्रिक देवी दुर्गा देवी मानव की उत्पत्ति समय कमल फूल की पत्ती को वस्त्र के रूप में धारण की थी। कमल के डंठल के रेसे से देवी के लिए वस्त्र तैयार हुआ, तब देवी ने प्रसन्न होकर कोसा फल प्रदान किया। केला फल के रेसे से कोसा वस्त्र बुनाई कार्य का सुत्रपात हुआ। चुंकि समुदाय का पेशा कोसा जैसे ऊँचे किस्म के वस्त्र निर्माण से रहा है इससे इनका नाम कोस्टा पड़ गया। इस जाति के लोगों के अनुसार इस शब्द की उत्पत्ति कुशवाहा -ठाकुर सामाजिक शब्द युग्म से हुई है। कालान्तर में शब्दों का संयुक्तीकरण हुआ और कुशवाहा से "कुश" और ठाकुर शब्द का "ठा" मिलकर कोष्टा शब्द निर्मित हो गया। कालान्तर में यही कोष्टा कहा जाने लगा।

इन लोगों के द्वारा यह भी कहा जाता है कि कोष्टा शब्द का प्रयोग किसी भी जाति व धर्म का प्रतीक न होकर एक उपाधि अथवा पदवी है। यह उपाधि एक कुशवाहा राजा राजहंस जो देव गिरी राज्य का राजा था, ने चोलो और चेरों के साथ हुए युद्ध में सम्मान प्राप्त की थी। कोष्टा शब्द उस समय एक शूरवीर कुशल और रणविद्या में पारंगत महान सेनापति व कुशल प्रशासक के लिए प्रयुक्त किया जाता था। यह पदवी राजा राजहंस को सन 1111 में कुंवार सदी दशहरा दिन रविवार को प्राप्त हुई थी, तब से बराबर राज्य के शासक अपने को कोष्टा लिखते रहे। कोष्टा समुदाय को क्षत्रीय वंश की एक जाति भी कहा गया है। इस वंश ने वस्त्र बुनने का पेशा अपनाया। कुछ कपड़ा बुनने की अपेक्षा कृषि सिलाई, दुकानदारी तथा

नौकरी पेशा को अपनाया । [138]

छत्तीसगढ़ में कोष्टा समुदाय की संख्या लगभग 10 लाख है । इनमें साक्षरता का प्रतिशत कम है । अविभाजित मध्यप्रदेश सरकार ने 2 अक्टूबर 1982 से कोष्टा जाति को अन्य पिछड़े वर्ग में रखा है । देश में औद्योगिकीकरण के कारण इनके हाथ करघा उद्योग को आघात लगा और इनके उद्योग-धन्धों का पतन होने लगा । फलस्वरूप इस समुदाय के लोग छोटे नगरों कस्बों एवं ग्रामों से पलायन कर बड़े नगरों में बसना प्रारंभ कर रहे हैं । माता परमेश्वरी अर्थात माँ दुर्गा इनकी आराध्य देवी है, तथा इनके उपास्थ देव दुल्ला देव हैं । दुल्ला इनमें महान पुरूष हुआ है जो शौर्य व वीरता प्रदर्शन करता हुआ विवाह के समय प्राणोत्सर्ग कर दिया, तब से वह महान आत्मा देव के रूप में पुज्य है । इन समुदाय के लोगों का आचार विचार उच्च हिन्दुओं जैसा है । इनमें कला के प्रति असीम अनुराग आज भी देखने को मिलता है ।

कोष्टा समुदाय में प्रचलित संस्कार

कोष्टा समुदाय के लोगों में प्रमुख रूप से जन्म, विवाह एवं मृत्यु संस्कार सम्पन्न किए जाते हैं । जन्म से संबंधित संस्कार में जन्मोत्सव में स्त्री-पुरूष भाग लेते हैं । बच्चे के जन्म के समय ग्रह, नक्षत्र देखने के लिए पंडित का सहारा लिया जाता है । अन्य कर्म काण्ड पंडित के सहायता लिए बिना ही सम्पन्न किए जाते हैं । मुल नक्षत्र में जन्म होने पर एवं तीसरा-तीसरी के जन्म पर उनकी शांति के लिए विशेष अनुष्ठान किए जाते हैं । लगातार कई बच्चों के मरने पर संतान प्राप्ति के लिए बैगा का सहारा लिया जाता है ।

इस समुदाय के लोगों में विवाह रस्म पांच दिनों तक चलता है । परंतु तीन दिनों में अधिकतर विवाह उत्सव सम्पन्न कर दिए जाते हैं । पहले पुरूष वर्ग ही बारात जाते थे, किन्तु अब लड़कियाँ भी जाती हैं । सगाई से लेकर पाणीग्रहण तक की रस्म पंडित के द्वारा सम्पन्न कराये जाते है । मृत्यु से संबंधित कर्मकाण्ड जैसे शवयात्रा, अंत्येष्टि, पिण्डदान, अस्थियाँ चुनना आदि कर्मकाण्डों को पुरूष ही सम्पन्न करते हैं । तथा दशगात्र, तेरहवी में स्त्री-पुरूष दोनों शामिल होते है । कोष्टा समुदाय के लोग अन्य समुदाय के लोगों की भांति व्रत एवं त्यौहार को मनाते हैं । इस समुदाय के कर्मकाण्ड एवं विश्वास में यह प्रचलन है कि बच्चे का जन्म होने पर उसकी नाल को घर में भूमि के अन्दर गाड देते हैं । इनका विश्वास है कि नाल को कही भी इधर-उधर फेंक देने से डायन स्त्री उसमें जादू लगा देती है । जिसका प्रभाव उस बच्चे पर पड़ता है।

बच्चे के जन्मोत्सव के समय देवी देवताओं की पुजा-अर्चना करते हैं, इससे इनका विश्वास है कि देवी-देवता प्रसन्न होकर बच्चे को आशिर्वाद देते है । मनुष्य से संबंधित सभी कर्मकाण्ड सम्पन्न करते हैं । इस समुदाय के लोगों में यह विश्वास है कि किसी व्यक्ति की मृत्यु पंचक में होने पर और पांच जीवों की मृत्यु होती है, इसलिए ये शव के साथ पांच आटे के पुतले जला देते हैं, इनका विश्वास है कि ऐसा करने से पांच अन्य जीव मरने से बच जाते हैं । व्रत एवं त्यौहारों में भी इनके अनेक विश्वास जुडे हुए हैं । [124]

इसके अलावा इस समुदाय में कई तरह के विश्वास एवं मान्यताएँ विद्यमान है । यद्यपि बदलती हुई परिस्थितियों में इस समुदाय में भी कुछ बदलाव आया है, परंतु यह बदलाव इस बात को स्पष्ट नहीं कर रहे हैं कि इनमें प्रचलित संस्कार, मान्यताएँ एवं विश्वास विलुप्त हो रही है, हाँ इतना अवश्य है कि इनमें कुछ ह्रास परिलक्षित हो रहा है ।

कोसा एवं कोसा बुनकर का उदभव

कोसा का इतिहास अति प्राचीन है । हमारे देश के अनेक धार्मिक ग्रंथों में इसका वर्णन है । जैसे :-

पाट कीट से होई,
तेही से पाटम्बर रूचिर ।
कृमि पालई सब कोई,
परम आपवन हान सम ॥

रामायण के सोरठा क्रमांक 95 क-ख में उक्त पंक्तियाँ उल्लेख है कि जिसका अर्थ है कि कोसा कीड़े से उत्पन्न होता है, उससे सुन्दर कोसा वस्त्र बनते हैं, कोसा वस्त्र परम अपवित्र कीडें को प्राणों के समान पालते हैं । [128]

अनेक विद्वानों द्वारा कोसा एवं कोसा बुनकर के प्रार्दुभाव के संबंध में उल्लेखित जानकारी एवं कहानी का वर्णन किया जाना उचित प्रतीत होता है ।

चीन की रानी नित्य प्रातः 'रानी पार्क' में घुमने जाया करती थीं । एक दिन पार्क के एक पेड़ पर चमकीले रेशे में लटकता हुआ फलों (कोसा) पर उनकी नजरें पड़ी तो उसने उस फलों को तोड़कर अपने पास रख लिया । रानी ने राजा को भी उक्त फलों के बारे में बताया। रानी फल के रेशे को कभी खींच कर, तो कभी धोकर, तो कभी जला कर रेशे निकालने की

कोशिश करती । एक दिन उस फल को पानी में उबाला तो उसमें से रेशा आसानी से निकलने लगा । इस क्रिया को अवलोकन कर रानी ने अनुमान लगाया कि यदि इस प्रकार की रेशा (धागा) अधिक मात्रा में मिल जाए तो मैं इससे वस्त्र बनवाऊंगी जो दूसरे वस्त्र से अलग एवं सुन्दर चमकीले होगी । यह विचार कर रानी ने राजा से सलाह मशवीरा कर अपने कर्मचारियों को उक्त फल दिखला कर उसी प्रजाति के फलों को खोज कर लाने का आदेश दी । फलस्वरूप उस फलों को कर्मचारियों मे ढूंढ़कर बड़ी संख्या में रानी को उपलब्ध कराया । फलों को उबालकर उससे रेशे (धागा) निकाला गया और उसी धागा से कर्मचारियों ने रानी के लिए वस्त्र बुनाई का कार्य किया। यहीं से कोसा बुनकर का प्रार्दुभाव विश्व में माना जाता है । [130]

यह माना जाता है कि लगभग पांच हजार वर्ष पूर्व चीन में कोसा वस्त्र बनाया जाता था, और कोसा से वस्त्र बनाये जाने का रहस्य दो हजार वर्ष पूर्व तक चीन के पास ही रहा। कोसा से वस्त्र निर्माण की जानकारी चीन से पहले जापान पहुंचा और उसके पश्चात अन्य देशों में । बौद्ध तीर्थ-यात्री इसके प्रचार प्रसार में सहायक रहे हैं ।

भारत में 606-648 ईसवीं में गुजरात प्रांत के नव विवाहित महिलाएँ कोसा धारण करती थीं, जो 'पटोल' के नाम से प्रचलित था । गुजरात में गृह उद्योग के रूप में कोसा बुनाई का कार्य लगभग दो हजार वर्ष पूर्व से चला आ रहा है । कोसा बुनाई व्यवसाय को राज घरानों में अधिक संरक्षण मिला । मोहम्मद तुगलक (1325 ईसवी से 1350) के शासन काल में इस उद्योग को बड़ा संरक्षण प्राप्त था । इसी काल में मिस्र से अब्बास अहमद नामक यात्री भारत आया उसने उल्लेख किया है "सुल्तान के कारखाने में कोसा वस्त्र की बुनाई करने वाले चार सौ बुनकर कार्य करते थे । ये बुनकर अनेक प्रकार का साही पोशाक के बुनाई का कार्य करते थे । सुल्तान प्रति वर्ष 20,000 हजार पोशाक वितरित करते थे ।"[115 क]

बुनाई व्यवसाय : ऐतिहासिक वृत्त

सृष्टि में मानव के आरंभ से ही मानव की मूलभूत आवश्यकताएँ भोजन और यौन संबंधी रही है । जब उन्हें प्रकृति की कठोरताओं से कष्ट होने लगा तब अपनी रक्षा हेतु तन को ढ़कने की जरूरत महसूस होने लगी और उस ओर ध्यान दिया गया । प्राचीन काल में लोग पेड़ों के पत्ते और छाल को तन ढ़कने के लिए उपयोग में लाने लगे बाद में व्यक्तित्व को और सुन्दर बनाने की दृढ़ इच्छा से वस्त्र निर्माण की ओर ध्यान दिया जाने लगा । भारत में वस्त्र

निर्माण कला इतनी पुरातन है जितनी इस देश की सभ्यता। प्राचीन काल से ही भारत वस्त्र उपयोग का प्रमुख केन्द्र रहा है। भारत कपास की जन्म भूमि है तथा इसे इस उद्योग का जन्मदाता कहा जाता है। हड़प्पा एवं मोहन जोदड़ों से प्राप्त अवशेषों तथा मिस्र के पिरामिडो की खोज के आधार पर यह कहा जा सकता है कि तत्कालीन समाज में मृत शरीर के साथ भारतीय मलमल भी दफनाई जाती थी। अमीर खुसरो ने लिखा है कि यह इतना उत्कृष्ट और हल्का होता था कि सौ गज मलमल सिर पर लपेटने पर भी भीतर के केश देखे जा सकते थे। आठवीं शताब्दी में ईस्ट इंडिया कंपनी भारतीय सूती कपड़ा भारत से ब्रिटेन भेजती थी जिसके कारण संपूर्ण यूरोप में कालीकट की केलिका, ढाका की मलमल एवं कश्मीर के शालों की मांग बढ़ गई। इस काल में सूती वस्त्र निर्माण में क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ। यूरोप में हुई औद्योगिक क्रांति के परिणाम स्वरूप सन् 1760 में लगभग 20 लाख किलोग्राम कपास का आयात किया गया जो सन् 1815 में बढ़कर 5 करोड़ किलोग्राम हो गया। [81]

प्रारंभ से ही ब्रिटिश निर्माता भारतीय कपड़े की लोकप्रियता से जलते थे क्योंकि अंग्रेजों के मोटे एवं सूती कपड़ों की जगह भारत के हल्के एवं सूती कपड़ों ने ले ली थी। रोबिन सन कूसों नामक प्रसिद्ध उपन्यास रचियता डेफी ने शिकायत की थी कि भारतीय कपड़ा हमारे घरों, अलमारियों व सोने के कमरों में घुस गया है। परदे, गद्दे कुर्सियों और बिस्तर तक में हर जगह और कुछ नहीं बल्कि भारतीय सामान है। फलस्वरूप इंग्लैंड ने न केवल भारतीय सूती वस्त्र पर प्रतिबंध लगाया बल्कि वहां के निवासियों के पास भारतीय माल उपलब्ध होने पर जुर्माना किया जाने लगा। हालैंड को छोड़कर लगभग संपूर्ण यूरोप में भारतीय सूती वस्त्र पर भारी मात्रा में कर लगा दिए गए क्योंकि भारत की सूती व रेशमी वस्तुएं ब्रिटिश बाजार में इंग्लैंड में बनी वस्तुओं की अपेक्षा 60 प्रतिशत अधिक कीमतों पर बेचकर लाभ कमा सकती थी। इन सभी संरक्षणात्मक कार्यवाहियों के बावजूद 18 वीं शताब्दी के उत्तार्द्ध तक भारतीय रेशम तथा सूती कपड़े विदेश बाजारों में जमे रहे लेकिन सन् 1813 के बाद इस हस्तकला उद्योग को ब्रिटिश दमनकारी नीति के कारण अपने विदेशी बाजार के साथ-साथ देशी बाजार में भी मात खानी पड़ी। इस प्रकार पेस्लेव मेनचेस्टर की मिलों का निर्माण व विकास भारतीय विनिर्माण के बलिदान से हुआ। इस तथ्य की व्याख्या करते हुए बोर्ड ऑफ रेवेन्यू, मद्रास के अध्यक्ष जान सुल्लिवान ने कहा कि हमारी व्यवस्था बहुत कुछ स्पंज की तरह काम करती है जिसके जरिए गंगातट से सारी अच्छी चीजों को सोख लिया जाता है और टेक्स नदी के किनारे उसे निचोड़ा जाता है।

इतनी प्रतिकूल परिस्थितियों के बावजूद प्रथम एवं द्वितीय विश्वयुद्ध काल के भारतीय वस्त्रोद्योग ने चहुंमुखी प्रगति की। इस क्षेत्र में नई-नई मिलों की स्थापना की गई। प्रथम आधुनिक सूती वस्त्र मिल मुंबई में सन् 1854 में कवास जी. डाबर द्वारा स्थापित कर ली गई थी। [57]

भारत हथकरघा की वस्तुओं के मामले में काफी समृद्ध रहा है और इस क्षेत्र में उसकी विरासत बहुआयामी है। प्राचीन काल में दुनिया के विभिन्न देशों में भारत से जो वस्तुएं निर्यात की जाती थी उनमें हथकरघा की वस्तुओं का स्थान सबसे ऊपर था। आधुनिक तकनीकी और अत्याधिक अनुसंधान और विकास से लाभान्वित दुनिया के अन्य देशों से मिली कड़ी स्पर्धा के बावजूद भारतीय हथकरघा की वस्तुओं का स्थान अब भी सर्वोपरि है। बेंजोड़ दस्तकारी, उत्कृष्ट डिजाइन, मोहक स्वरूप तथा रंगों के इस्तेमाल के लिए भारतीय दस्तकार आज भी सराहे जातें हैं। इसका प्रमाण यह है कि चालू वर्ष में हथकरघों वस्तुओं का 20 अरब, 15 करोड़ रूपये का निर्यात हुआ जबकि 1992 -93 में 10 अरब, 34 करोड़ रूपये का निर्यात हुआ था। 50 के दशक की शुरूआत में 50 करोड़ वर्गमीटर हथकरघा वस्तुओं का उत्पादन होता था जो 1997-98 में बढ़कर 7 अरब, 86 करोड़, 20 लाख वर्गमीटर हो गया। [135]

विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से किए गए प्रयासों से कोसा बुनाई उद्योग ने निरंतर प्रगति की है। भारत में इस उद्योग के प्रमुख क्षेत्र गुजरात, महाराष्ट्र, मालवा का पठार, छत्तीसगढ़ है। नागपुर, चांदा तथा भण्डारा में उत्तम और मध्यम किस्म की बुनाई कार्य होता था। बुरहानपुर में उच्च स्तर के सूत के धागों में सोने व चांदी के बारीक तार मिलाकर उच्चकोटि के सिल्क का निर्माण होता था। इस प्रकार मिश्रित सिल्क को ''कालाबट्टो'' कहा जाता था। बुरहानपुर में उच्च कोटि के सफेद 'लिनन' का भी उत्पादन किया जाता था। नागपुर, पोयानी, उमरद, चांदा, खापा, मोहदा और सोनार उत्पादन के प्रमुख केन्द्र थे। सिल्क बार्डर की निर्माता साड़ियां छोटी आदि पर्याप्त मात्रा में पंडरपुर, नासिक, पूना और मुंबई सप्लाई की जाती थी। यद्यपि स्वतंत्रता प्राप्ति तक कोसा वस्त्र उद्योग साधारण रूप से चलता रहा। इस उद्योग के विकास हेतु केन्द्रीय रेशम बोर्ड, विकास आयुक्त हथकरघा कार्यालय के साथ 24 बुनकर सेवा केन्द्रों और 4 भारतीय हथकघा टेक्नोलॉजी संस्थाओं के अतिरिक्त कई क्षेत्रीय मण्डल एवं बोर्ड कार्यालयों की स्थापना की गई है। विकास और निर्यात संवर्धन के लिए राष्ट्रीय हथकरघा विकास निगम ने 09 विकास परिसर स्थापित किए। [58]

भारत में लगभग दस हजार हथकरघा कोसा बुनकर ईकाईयां अस्तित्व में है । हथकरघा बुनकरों एवं कोसा बुनकरों को सुविधा एवं उत्पादित वस्त्र को संरक्षण प्रदान करने के ध्येय से शासन द्वारा 1952 में ''अखिल भारतीय हथकरघा मण्डल की स्थापना की गई ।

छत्तीसगढ़ में कोसा उत्पादन

कोसा उत्पादन के लिए छत्तीसगढ़ देश ही नहीं बल्कि विदेशों में भी जाना जाता है । यह रेशम उद्योग का ही हिस्सा है । प्रदेश में दो तरह के रेशम उत्पादित होता है, जिनमें पहली किस्म ''कोसा'' और दूसरी किस्म ''शहतूती रेशम'' (मलबरी) की है । राज्य के 08 जिलों में रेशम का उत्पादन किया जाता है । रेशम उत्पादन रोजगार मूलक उद्योग है । एक वर्ष में 04 से 06 बार तक की मलबरी रेशम की फसल ली जाती हैं । प्रदेश एवं केन्द्र सरकार रेशम उद्योग को बढ़ावा देने हेतु विशेष प्रयास कर रही है । इस दिशा में राज्य में रेशम संचालनालय स्थापित हैं ।

राज्य शासन ने मलबरी रेशम का उत्पादन बढ़ाने के लिए राजनांदगांव तथा दुर्ग जिलों में स्थित रेशम केंद्रों पर मलबरी रेशम उद्योग में लगे किसानों को शहतुत की निःशुल्क कलमें देने के साथ-साथ प्रति एकड़ अनुदान राशि देना प्रारंभ की । इसके अतिरिक्त इस उपयोग में धागा बनाने वाली निजी इकाईयों को चरखा तथा शेड के लिए विशेष अनुदान राशि प्रोत्साहन स्वरूप देने का प्रावधान किया है । प्रदेश में कोसा उत्पादन से संबद्ध योजनाएं सरगुजा, बस्तर, बिलासपुर तथा रायगढ़ में संचालित की जा रही है । रायगढ़ तथा बिलासपुर जिलों में कोसा का उत्पादन सैकड़ों वर्षों से होता चला आ रहा है । बस्तर के वनांचल कोसा के कोकू न के प्रमुख उत्पादन स्थान है । कोसा के कीड़े एक विशेष पेड़ की पत्तियों को खाते हैं । ये पेड़ साजा, और साल के होते हैं जो रायगढ़, बिलासपुर और बस्तर जिलों में पाए जाते हैं । [119]

वस्तुतः देखा जाए तो रेशम प्रकृति की मानव को सबसे अनुपम देन है । इसके जितना मुलायम सुन्दर और चिकना धागा आज तक कृत्रिम रूप से बनाया नहीं जा सका है । रेशम का धागा इतना अधिक मजबुत होता है कि अगर उसके समान स्टील का तार भी लिया जाए, तो रेशम का धागा उससे भी अधिक मजबूत होगा । यही वजह है कि रेशम के धागे का इस्तेमाल इस वैज्ञानिक युग मे भी रेशम के कपड़े बनाने, रेसिंग की साइकिल के टायर बनाने, टेनिस के रैकेट, कोल्ड क्रीम, पाउडर, गुब्बारों तथा पैराशूट को बनाने के लिए किया जाता है ।

रेशम उत्पादन की दृष्टि से विश्व में चीन के बाद भारत का ही स्थान है, किन्तु कोसा बनाने के क्षेत्र में तो केवल मध्यप्रदेश एवं छत्तीसगढ़ का ही नाम है, जहां उत्तम किस्म का श्रेष्ठतम कोसा बनाया जाता है ।

रेशम उद्योग को बढ़ावा और पूर्ण रूप से संरक्षण देने हेतु केन्द्रीय रेशम बोर्ड ने पूरे देश में अनुसंधान, विकास तथा उत्पादन इकाईयों स्थापित की है । जिसके अंतर्गत रेशम उत्पादन, किस्म सुधारने, उत्पादकता में सुधार लाने, शहतूत के पौधे उगाने, उनका बीज तैयार करने तथा रेशम कीट पालन के लिए आधुनिक और उत्तम तकनीक का प्रयोग किया जाता है । अंतर्राज्यीय ''टसर'' विकास योजन (स्विट्जरलैण्ड) की सहायता से बिलासपुर तथा रायगढ़ जिलों में 1.65 करोड़ रू. की लागत से कोसा उद्योग के आधुनिकीकरण के लिए कई प्रकार के कार्य किए गए हैं । [119]

बनाई व्यवसाय : छत्तीसगढ़ में

छत्तीसगढ़ में कोसा बुनाई व्यवसाय में कोष्टा समुदाय की अद्वितीय भूमिका रही है। उच्च कोटि की बुनाई परंपरा को कायम रखते हुए प्रदेश में लगभग 3000 कोसा बुनकर ईकाई कार्यरत हैं । सहकारी समिति के अंतर्गत लगभग 700 बुनकर ईकाई कार्यरत हैं , शेष निजी (स्वतंत्र) एवं महाजन से संबंद्ध बुनकर इकाई के रूप में विद्यमान है । बुनाई व्यवसाय लगभग 21,000 हाथ करघों पर लगभग 70,000 हजार लोगों को प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से रोजगार मुहैया करवाकर राज्य की अर्थ व्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहा है । प्रदेश के जांजगीर-चांपा और रायगढ़ जिले कोसा वस्त्र उत्पादन के लिए विख्यात है । यहां से उत्पादित कोसा वस्त्र देश में ही नहीं बल्कि अंतर्राष्ट्रीय बाजार में भी अपनी श्रेष्ठता की वजह से पहचान बनाए हुए है । रायपुर, बिलासपुर, दुर्ग, राजनांदगांव और बस्तर जिलों के हाथ करघा सूती उत्पादों की अपनी विशिष्टता है ।

राज्य के कोष्टा समुदाय कोसा वस्त्र उत्पादन स्थानीय संस्कृति से प्रतिबिंबित करते हुए परंपरागत तरीके से करते हैं । कोसा उद्योग एवं बुनकरों के विकास हेतु प्रदेश शासन के ग्रामोद्योग विभाग के अंतर्गत ''राज्य वस्त्र निगम'' हाथ करघा कार्यालय संचालित है और इसके माध्यम से विभिन्न शासकीय योजनाओं एवं कार्यक्रमों का क्रियान्वयन किया जा रहा है । इसके अलावा कताई तथा कोसा वस्त्र बुनाई केन्द्र, कोसा वस्त्र बाजार, प्रशिक्षण केन्द्र बुनकर सेवा

केन्द्र खोले गये हैं जिससे राज्य के बुनकर लाभ उठा रहें हैं । बुनकरों के सर्वांगीण विकास के हितार्थ छत्तीसगढ़ राज्य हाथ करघा विकास एवं विपणन संघ अस्तित्व में है । इस संघ को देश के हाथ करघा निगमों एवं शीर्ष समितियों के केन्द्रीय संघ ''आकाश'' की सदस्यता प्राप्त है। देश की राजधानी दिल्ली में ''दिल्ली हाट'' के नाम से प्रदर्शनी का सफल आयोजन संघ कर चुका है । पावरलूम क्षेत्र की कड़ी चुनौती के बावजूद कोसा व्यवसाय एवं हथकरघा उद्योग अपने पहचान को बनाये रखे हुए हैं । प्रदेश में प्रति वर्ष लगभग 30 करोड़ रूपयों का कोसा वस्त्र का उत्पादन होता है जिसमें लगभग 25 करोड़ रूपये का कोसा वस्त्र निजी क्षेत्र से अंतर्राष्ट्रीय बाजार में भेजी जाती है । [132]

रायगढ़ क्षेत्र में बुनकर (कोष्टा)समुदाय : उद्‌भव एवं विकास

महिमामय अतीत की आभा से आलोकित नवोदित राज्य छत्तीसगढ़ के पूर्वांचल में अवस्थित आदिवासी बहुल रायगढ़ क्षेत्र अपने प्राकृतिक एवं नैसर्गिक संसाधनों विशेषकर खनिज, वनोत्पाद एवं कोसा वस्त्र उत्पादन के लिए विख्यात है । क्षेत्र की जलवायु कोसा कृमि पालन (कोसा फल) के लिए उपयुक्त है । इस क्षेत्र के कोष्टा समुदाय कोसा वस्त्र का कार्य सदियों से अपने पांरपरिक हाथ करघा से बुनाई करते आ रहें हैं । कुटीर उद्योग के रूप में कोसा वस्त्र बुनाई कार्य का महत्वपूर्ण स्थान है । क्षेत्र के कोष्टा समुदाय द्वारा निर्मित कोसा वस्त्र की मांग अधिक है । जिला प्रदेश एवं देश की राष्ट्रीय आय में विदेशी मुद्रा जूटाने में क्षेत्र के कोष्टा समुदाय साधक बने हुए हैं । अनेकों समस्याओं से जूझते हुए और पावरलूम उद्योग से कड़ी प्रतिस्पर्धा के बावजूद भी क्षेत्र कोष्टा (बुनकर) समुदाय अपने पारंपरिक धंधे बुनाई व्यवसाय को जीवंत रखे हुए हैं । वर्तमान में बुनकरों का आय का प्रमुख स्त्रोत कोसा बुनाई है । जिले में अवस्थित सारंगढ़ नगर के कोष्टा समुदाय के द्वारा निर्मित की जाने वाली कीमती कोसा साड़ी की पर्याप्त ख्याति है ।

जिला मुख्यालय जांजगीर-चांपा के व्यापारिक केंद्र चांपा नगर में कोष्टा समुदाय निजी तौर पर कोसा वस्त्र का उत्पादन वर्षो से अपनी परंपरागत डिजाइन एवं विधि से करते आ रहें हैं। यहां लगभग 700 करघे संचालित है तथा लगभग 0 प्रोशेसिंग इकाईयाँ पोस्ट विविंग कार्य में जुड़े हुए हैं । चांपा नगर में कोसा वस्त्र व्यवसाय में लगभग 3000 व्यक्ति प्रत्यक्ष रूप से रोजगार पा रहें हैं । चांपा नगर में निजी क्षेत्र से प्रति वर्ष 25 करोड़ रूपये का कोसा वस्त्र जापान,

अमेरिका सहित अन्य यूरोपीय देशों को निर्यात किया जाता है । जिले की अर्थव्यवस्था प्रत्यक्ष रूप से कोसा वस्त्र व्यापार से प्रभावित है । [132]

रायगढ़ क्षेत्र में वर्तमान में लगभग 2000 कोसा बुनकर इकाई कार्यरत है जो संपूर्ण छत्तीसगढ़ राज्य का लगभग 66 प्रतिशत है ।

व्यक्तिगत सर्वेक्षण से मालूम हुआ कि रायगढ़ क्षेत्र में बुनकर (कोष्टा) समुदाय विकास के लिए निम्नलिखित सहकारी समितियाँ स्थापित की गई है :-

सारिणी क्रमांक - 1

(रायगढ़ क्षेत्र में कार्यरत बुनकर सहकारी समितियाँ)

क्र.	सहकारी समिति का नाम और स्थान	पंजीयन क्रमांक	स्थापना तिथि
1-	छत्तीसगढ़ कोसा बुनकर सह. संघ मर्या. रायगढ़	01	03-06-1953
2-	दुर्गा कोसा बुनकर सह. संघ मर्या. रायगढ़	383	08-08-1957
3-	जिला कोसा बुनकर सह. संघ मर्या. रायगढ़	582	30-09-1957
4-	दुर्गेश्वरी बुनकर सह. संघ मर्या. सारंगढ़	124	19-02-1963
5-	सम्लेश्वरी कोसा बुनकर सह. संघ मर्या. सारंगढ़	653	16-03-1963
6-	श्री राम कोसा कताई एवं बुनाई सह. संघ मर्या. रायगढ़	143	22-04-1963
7-	आर्दर्श बुनकर सह. समिति मर्या.मुरा, खरसियां	253	11-03-1964
8-	जनता बुनकर सह. समिति मर्या. रायगढ़	32	08-08-1977
9-	बुनकर सह. समिति मर्या., मुड़ूमकेला, रायगढ़	33	05-09-1977
10-	बुनकर सह. समिति मर्या. तमनार	34	03-10-1977
11-	बुनकर सह. समिति मर्या., बरमकेला	433	25-08-1979
12-	बजरंग बुनकर सह. समिति, रायगढ़	457	26-08-1983
13-	बुनकर सह. समिति मर्यादित, धरमजयगढ़	470	21-08-1984

(स्त्रोत - व्यक्तिगत सर्वे, 27)

जांजगीर -चांपा एवं रायगढ़ क्षेत्र के कोष्टा समुदाय द्वारा प्राचीन सामय से पीढ़ी -दर पीढ़ी कोसा वस्त्र बुनाई का कार्य करते आ रहे हैं । जांजगीर-चांपा और रायगढ़ क्षेत्र में कोष्टा समुदाय

एवं बुनाई व्यवसाय को निम्न लिखित 3 सोपानों में विभक्त कर अध्ययन करना उचित प्रतीत होता है :-

1- सन् 1900 से पूर्व की स्थिति

2- सन् 1900 से स्वतंत्रता प्राप्ति तक की स्थिति

3- स्वतंत्रता प्राप्ति से वर्तमान तक स्थिति

1- सन् 1900 से पूर्व की स्थिति :-

अध्ययन क्षेत्र के इतिहास में इस बात की प्रामाणिक व स्पष्ट जानकारी कहीं उल्लेखित नहीं है कि कोष्टा समुदाय अपने परंपरागत बुनाई व्यवसाय को कब से करते आ रहें हैं किन्तु भारत में इस व्यवसाय का इतिहास जहां से आरंभ होता है वहीं से इस क्षेत्र में भी कोषा वस्त्र बुनाई का कार्य प्रारंभ हुआ माना जा सकता है । इस सर्वेक्षण के दरम्यान बुनकरों से व्यक्तिगत संपर्क करने पर मालूम हुआ कि उन्हें हाथ करघा से कोसा वस्त्र बुनने की कला उनके पूर्वजों से विरासत के रूप में मिला हुआ है । कोष्टा जाति के द्वारा मोटे किस्म के सूती वस्त्र बनाने का कार्य कम मूल्यों पर किया जाता रहा है जिसका ग्रामीण बाजार में मांग आज भी अधिक है । अध्ययन क्षेत्र में कृमि पालन (कोसाफल) का कार्य भी वर्षो पुरानी है जिसे अधिकांशतः अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के लोग करते आ रहे हैं ।

2-सन् 1900 से स्वतंत्रता प्राप्ति तक की स्थिति :-

बुनकर समुदाय मे किसी प्रकार का संगठन न होने के कारण सन् 1900 के बाद भी इस व्यवसाय में कोई खास प्रगति नहीं हुई, वहीं पारंपरिक ढंग से वस्त्रों का निमार्ण होता रहा । सरकार का ध्यान भी बुनकरों के हितों की ओर नहीं गई । शासन ने सन् 1921 में सर इब्राहिम रहीमतुल्ला की अध्यक्षता में प्रशुल्क आयोग गठित की । इस आयोग को भारत सरकार ने प्रशुल्क नीति और इम्पीरियल प्रिफरेंस के मार्गदर्शी सिंद्धात को व्यवहारिक रूप प्रदान करने की संभावनाओं की निरीक्षण करने का दायित्व सौंपा गया । इस आयोग के द्वारा प्रस्तुत प्रतिवेदन सन् 1922 में प्रकाशित हुई तथा भारत शासन ने सन् 1923 में आयोग की प्रतिवेदित मुख्य सिफारिशों में अनेक उद्योगों को शामिल किया गया था । परंतु अनुशंसित उद्योगों में हाथ करघा उद्योग शामिल नहीं होने की वजह से आयोग के सिफारिशो से लाभांवित होने से हाथ करघा

उद्योग वंचित रह गया । परिणाम स्वरूप कोसा वस्त्र बुनकर एवं उनका व्यवसाय विकसित होने की अपेक्षा अन्य उद्योगो की प्रतिकुल परिस्थिति एवं प्रतिस्पर्धा के कारण अनवरत् पतन हुआ । [128]

3-स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् :-

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् बुनकर समुदाय एवं हाथकरघा व्यवसाय की ओर सरकार द्वारा ध्यान दिया गया । भारत की अधिकांश जनसंख्या गांवों में निवास करती है तथा ग्रामीण आबादी में लोग गरीबी एवं अशिक्षित हैं ऐसी स्थिति में राष्ट्र पिता महात्मा गांधी का इस कथन '' कुटीर उद्योगों से ही देश का विकास संभव है'' की ओर ध्यान दिया गया और यह महसूस व अनुभव किया गया कि बुनकरों के द्वारा किए जाने वाले बुनाई कार्य भी कुटीर उद्योगों में से एक है और कुटीर उद्योगों से ही देश की विकास त्वरित गति से हो सकेगा, इस तथ्य की ओर सरकार का ध्यान आकृष्ट हुआ । बुनकरों के संगठनात्मक अभाव में सरकारी समितियों के जरिये इस व्यवसाय में प्रगति आयी । ये सहकारी समिजियाँ बुनकरों को कच्चा माल प्रदान करते हैं और बुनकर वस्त्र तैयार करके इन समितियों को सौंप देते हैं । इससे बुनकरों को यह लाभ होता है कि उनके द्वारा तैयार वस्त्र के बिक्री हेतु उन्हें बाजार खोजने की जरूरत नहीं पड़ती। इस प्रकार स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद निः संदेह अध्ययन क्षेत्र के बुनकर (कोष्टा) समुदाय का विकास सहकारी समितियों के माध्यम से हुआ है । [128,129]

कोसा वस्त्र हेतु कच्चा माल '' कोसाफल '' का उत्पादन रायगढ़ क्षेत्र में वर्तमान में किया जा रहा है । इसके लिए क्षेत्र की जलवायु उपयुक्त है । क्षेत्र के कोष्टा समुदाय में दक्ष कारीगर हैं । रंगाई का कार्य परंपरागत तरीके से किया जाता है । उत्पादित वस्त्र के बाजार के रूप में संपूर्ण भारत वर्ष और विदेश है जहां पर्याप्त रूप में निर्यात भी किया जाता है ।

रायगढ़ एवं जांजगीर- चांपा क्षेत्र में कुटीर उद्योगों के रूप में बुनाई व्यवसाय के विकास की बहेतर संभावनाएं विद्यमान है । शासन के ग्रामोद्योग विभाग द्वारा इन व्यवसायों को प्रोत्साहन दिया जा रहा हैं । इन व्यवसायों में ग्रामीण युवाओं के सोच के अनुकूल आधुनिक तथा पारंपरिक ज्ञान का उपयोग किया जा सकता है । इन गतिविधियों में युवाओं की दिलचस्पी के अनुरूप स्वरोजगार मिल सकता है । वहीं बड़ी संख्या में अन्य लोगों को रोजगार भी दिलाया जा सकता है ।

बुनकर (कोष्टा) समुदाय के प्रोत्साहन के लिए ग्रामोद्योग विभाग द्वारा बुनाई व्यवसाय के लिए कार्यशील पूंजी, विपणन, आधुनिकीकरण तथा इनमें कार्यरत मजदूरों के कल्याण के लिए विभिन्न योजनाएं अमल में लायी जा रही है। बुनकर (कोष्टा) समुदाय इस दिशा में पहल करके न केवल अपने जीवन स्तर में बदलाव ला सकते हैं। बल्कि क्षेत्र को एक नई पहचान भी दे सकते हैं।

---000---